Issue-12; Vol.01, Sept. 2021 **Impact Factor: 6.003 (I2OR)**
ISSN–2231-1130
●●●●VEETHIKA●●●

ग्राम पंचायत और धर्म

डॉ0 रणजीत
अस्सिटेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र,
एस0बी0एस0पी0जी0 कालेज, मंगलपुर, बाराबंकी।

शोध–सार

प्रस्तुत शोध पत्र उ0प्र0 के बाराबंकी जनपद में त्रिवेदीगंज विकास खण्ड की ग्राम पंचायतों पर आधारित है। ग्राम पंचायत स्थानीय स्वशासन की महत्वपूर्ण संस्था है, ग्रामीण विकास में पंचायती राज संस्था की महत्वपूर्ण भमिका है।अध्ययन में ग्राम पंचायत के विकास में धर्म की अवधारणा का मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन में त्रिवेदीगंज ब्लॉक में 58 ग्राम पंचायत है, समस्त पंचायतों का चयन किया गया। इन ग्राम प्रधानों से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राथमिक तथ्य संकलित किये गये है। कुल 57 ग्राम प्रधान हिन्दू धर्म व 01 प्रधान मुस्लिम धर्म का है।ग्रामीण विकास में धार्मिक भिन्नता विद्यामान है। जिसके कारण बहु संख्यक (हिन्दू) सामाजिक–आर्थिक विकास में आगे निकल रहे है। अल्पसंख्यक (मुस्लिम) विकास में पीछे रह गये है। अतः पंचायत चुनावों में धर्म और जाति संस्थाएँ प्रभावी होती है।

मुख्य शब्दः– *पंचायत, ग्राम सभा, ब्लॉक, विकेन्द्रीकरण, नौकरशाही, धर्म।*

प्रस्तावना

विश्व की वृहद्धतम लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था भारत की प्रमुख विशेषता है। लोकतंत्र मूलतः विकेन्द्रीकरण पर आधारित शासन व्यवस्था है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और पंचायतीराज दोनों एक दूसरे के पर्याय बन गये है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एशिया एवं अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रों ने लोकतंत्र की जड़ो को मजबूत बनाने एवं सामान्य जन को अपने नागरिक एवं राजनीतिक कार्यो में वास्तविक भागीदारी बनाने की दृष्टि से लोकतांत्रिक संरचना का अधिकतम विकेन्द्रीयकरण करने का प्रयोग प्रारम्भ किया। इस प्रकार के प्रयोगों को ''ग्राम कर डेमोक्रेसी'' के नाम से अभिहित किया गया। धरातल पर लोकतंत्र से अभिप्राय है ऐसी राजनीतिक संरचना जिसमें लोकतंत्र केवल राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय स्तरों तक सीमित नही हो अपितु उसका विस्तार वास्तविक अर्थ में स्थानीय स्तर तक हो।

लोकतंत्रीय राजनीतिक व्यवस्था में पंचायती राज ही वह माध्यम है जो शासन को आम जन के दरवाजे तक लाता है। पंचायती राज व्यवस्था में स्थानीय लोगों की स्थानीय कार्यो में अनवरत रूचि बनी रहती है, क्योंकि वे अपनी स्थानीय समस्याओं का स्थानीय स्तर पर ही समाधान कर सकते हैं ये लोग प्राथमिक स्तर नियम पूर्वक एवं विकासात्मक कार्यों को करने में सहायक सिद्ध होते हैं। अतः इस अर्थ में पंचायती राज संस्थायें स्थानीय जन सामान्य को शासन के कार्यो में सहभागिता की प्रक्रिया के माध्यम से लोगों को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से शासन एवं प्रशासन को प्रशिक्षण स्वतः प्रदान करती रहती हैं। स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण प्राप्त कर ये स्थानीय प्रतिनिधि ही कालान्तर में प्रान्तीय एवं केन्द्रीय व्यवस्थापिकाओं का प्रतिनिधित्व कर राष्ट्र को सक्षम नेतृत्व प्रदान करते हैं।

भारत में पंचायती राज का उद्‌भव एवं विकास

पृथ्वी पर जब से मानव का जन्म हुआ, तब से मानव ने स्वयं के अस्तित्व के विषय में सोचा और तभी से उसने समूह के रूप में रहना आरम्भ किया हैं, तभी से अपनी सुख सुविधाओं के विभिन्न आवश्कताओं पर विचार करने लगा। समय और परिस्थितियों ने उन आवश्यकताओं का निर्धारण किया, स्वयं में परिवर्तन एवं परिशोधन किया पंचायती राज परिकल्पना भी इसी परिवर्तन का परिप्कृत रूप है, प्राचीन काल से विद्यमान रही है और अपने अस्तित्व को न केवल कायम

रखा अपितु समय–समय पर सार्थक दिशा में परिवर्तन किया है। स्थानीय शासन को भारत की मनोवैज्ञानिक और व्यवहारिक आवश्कता के रूप में चिंन्हित किया गया है। मनुष्य की सदैव से यही इच्छा रही है कि जो भी सरकार हो वह उसके स्वयं के द्वारा चुनी हुई एवं अच्छी सरकार होनी चाहिए। मनुष्य प्रकृति से स्वकेन्द्रित होता है इस लिए वह कभी यह नही चाहता कि उसके सार्वजनिक मामलों का निर्णय कोई और करे।

भारत में पंचायती राज अत्यन्त प्राचीन व्यवस्था है। इस सम्बन्ध में भारत के प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ ऋग्वेद में ''सभा'' एवं ''समिति'' के रूप में लोकतांत्रिक स्वायत्तशासी संस्थाओं का उल्लेख मिलता है। इतिहास के विभिन्न अवसरों पर केन्द्र में राजनैतिक उथल–पुथल के बावजुद सत्ता परिर्वतनों से नित्य प्रभावित रह कर भी ग्रामीण स्तर पर यहस्वायत्तशासी इकाईयाँ पंचायतें, आदिकाल से निरन्तर किसी न किसी रूप में कार्यरत रही हैं। पंचायत शब्द को संस्कृत भाषा के ''पंचायतन'' से परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ होता है ''पाँच व्यक्तियों का समूह''। स्वाभाविक रूप से 5 अंक विषम होने के कारण दो समान भागो में विभाजित नही हो सकता, इस प्रकार निर्णय या मत विभाजन एक पक्ष की ओर सुनिश्चित हो सकेगा।

वैदिक साहित्य में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की संगठित व्यवस्था के कुछ सन्दर्भ मिलते हैं। उस समय ''ग्राम'' प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी जिसका मुखिया ग्रामीण कहलाता था। ग्रामीणी अपने ग्राम बुजुर्गो से सलाह कर अपना कार्य करता था। ग्राम से विश, विश से जन तथा जन से मिलकर राष्ट्र का निर्माण होता था। ऋग्वेद के सूक्त (9/26/6) मे एक सभा का उल्लेख मिलता है। इसमें कक्ष को सभा, प्रमुख को सभासद एवं सभा के योग्य व्यक्ति को समेय कहा गया है। उस समय कृषि एवं पशुपालन ही प्रमुख व्यवसाय थे, इस कारण ग्रामों का नगरों की अपेक्षा अधिक महत्व था। यातायात के साधन सुगम नहीं थे, इसलिये प्रत्येक ग्राम स्वावलम्बी होता था।

रामायण तथा महाभारत के काल में ''सभा'' छोटे राज्यों का उल्लेख मिलता है, रामायण में जनपदों को ग्रामीण गण राज्यों के संघों के रुप में जाना जाता था। स्मृति काल में मनुस्मृति में उल्लेख है कि राष्ट्र में राजा प्रजा पर शासन करता है। ''ग्रामीण'' ग्रामीण शासन के लिए उत्तरदायी होता था, इसका प्रमुख कार्य ग्रामवासियों से कर एकत्रित करना तथा ग्राम में शांति व्यवस्था बनाए रखना था। मौर्य काल में प्रचलित कैटिल्य के अर्थशास्त्र में ग्रामीण प्रशासन व्यवस्था का वर्णन मिलता है। कैटिल्य के अनुसार प्रत्येक ग्राम का शासन प्रथक–प्रथक होता था। ग्रामों को जनसंख्या के आधार पर तीन भागों में विभक्त किया गया था, ज्येष्ठ, माध्यम एवं कनिष्ठ सभी ग्राम कर के आधार पर चार भागों में विभक्त थे। ग्रामाग्र, परिहारक, आयुधीय, वस्तुग्राम। गुप्तकाल में स्थानीय स्वशासन व्यवस्था मौर्य काल के सामान ही रही। मुगल काल में पंचायती राज (1556–1750) इस काल में भी प्रत्येक गांव की एक सभा होती थी, जो अपने क्षेत्र में शासन का सम्पूर्ण कार्य सम्भालती थी। साम्राज्यों के उत्थान एवं पतन के बावजूद भी परम्परागत अधिकारी, मुखिया, लेखाकार तथा चौकीदार सभी सक्रिय थे। प्रत्येक गांव में एक पद मुखिया का होता था, जिसे ''पटेल'' कहा जाता था तथा वह राजस्व संग्रह का कार्य करता था। सन् 1870 में लॉर्ड मेयो का विकेन्द्रीयकरण सम्बन्धी प्रस्तव पारित किया गया, किन्तु इसके बाद भी स्थानीय शासन पूर्णतः अभारतीय बना रहा। 1882 में लॉर्ड रिपन भारत का गर्वनर जनरल नियुक्त हुआ था तथा उसने उदारता के साथा स्थानीय स्वशासन को स्वशासी बनाने का प्रस्ताव किया, जिसे ''महान अधिकार पत्र'' की संज्ञा दी गयी तथा उसे स्थानीय स्वशासन का जनक माना जाता है। 1907 में ''राजकीय विकेन्द्रीकरण आयोग'' की स्थापना की गयी, किन्तु इसकी सिफारिशें भी क्रियान्वित नहीं हो पायी। 1935 के भारत शासन अधिनियम के द्वारा प्रान्तीय स्वायत्ता की शुरुआत

हुई। इसके फलस्वरुप देश में स्वंत्रता की दिशा में एक शक्तिशाली पहल हुई, जिसका स्थानीय संस्थाओं पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा।

स्वतंत्र भारत में पंचायत राज

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं स्थानीय स्वशासन की दिशा में एक नई शुरुआत हुई। 26 जनवरी 1950 को स्वतंत्र भारत का संविधान लागू हुआ। संविधान में पंचायती राज को नीति निर्देशक तत्वों में स्थान दिया गया। संविधान के अनु0 40 में प्रावधान है कि ''राज्य ग्राम पंचायतों'' का संगठन इस प्रकार करने के लिए बाध्य होगा। भारत में 1947 में सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश राज्य में ग्राम पंचायतों के विकास हेतु एक अधिनियम पारित किया, जिसके तहत 1948 में ग्राम पंचायतों के चुनाव भी सम्पन्न हुए। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात पहला प्रयास सामुदायिक विकास कार्यक्रम का शुभारम्भ था। जिसे 02 अक्टूबर 1952 में शुरु किया गया। जिसका मुख्य उद्देश्य ''अधिकतम लोगो का अधिकतम कल्याण'' करना था, जिसकी प्राप्ति हेतु अनेक कार्य निर्धारित किये गये एवं जिसका उत्तरदायित्व नौकरशाही को ही सौंपा गया था। किन्तु रजनी कोठारी का मत था कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम नौकरशाही द्वारा संचालित होने के कारण विफल रहा, जिसमें स्थानीय लोगो को भागीदारी नहीं बनाया गया। जबकि स्थानीय समस्याओं तथा तत्सम्बन्धी का ज्ञान स्थानीय लोगो का अधिक होता है एवं उनके समाधान का उपाय भी वही लोग कर सकते है।

बलवंत राय मेहता समिति 1957 – सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रभावी रुप न ग्रहण कर पाने के कारण बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन इस कार्यक्रम की समीक्षा हेतु किया गया, जिसमें समिति ने कार्यक्रम की असफलता का कारण लोकप्रिय नेतृत्व का आभाव बताया। इस समिति ने लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर आधारित त्रिस्तरीय पंचायती राज स्थापित करने की सिफारिश की जो निम्नलिखित हैः–

1. गांव स्तर पर गांव पंचायत।
2. क्षेत्र स्तर पर क्षेत्र पंचायत।
3. जिला स्तर पर जिला पंचायत।

मेहता समिति द्वारा प्रस्तुत प्रतिवेदन पर जनवरी 1958 में विकास परिषद ने समिति की सिफारिशों के अनुमोदन के साथ ही यह सुझाव भी दिया कि प्रत्येक राज्य को ऐसी पंचायत राज व्यवस्था का विकास करना चाहिए। मेहता समिति के अनुरुप पंचायती राज व्यवस्था का 02 अक्टूबर 1959 को राजस्थान के नगौर जिलें में शुभारम्भ किया गया। तत्पश्चात इसी दिन आन्ध्र प्रदेश में भी पंचायती राज की शुरुआत की गयी एवं आगामी 02–03 वर्षो में देश के अधिकांश भागों में पंचायती राज व्यवस्था लागू कर दी गयी। केन्द्र में तत्कालीन नेतृत्व के अधीन राज्य सरकारों में पंचायती राज को मजबूत करने के प्रयास किए, फिर भी उत्साह केवल पांच वर्षो तक ही रहा, इसके बाद ठहराव का चरण आया। अशोक मेहता समिति (1977) में राष्ट्रीय स्तर पर प्रथम बार कांग्रेस के स्थान पर गठित जनता पार्टी की सरकार ने दिसम्बर 1977 में अशोक मेहता की अध्यक्षता में 13 सदस्यीय पंचायती राज आयोग की नियुक्ति इस उद्देश्य से की गयी कि आयोग पंचायती राज को सार्थक या कल्याणकारी बनाने के लिए सुझाव प्रदान करने हेतु देश की वर्तमान पंचायती राज संस्थाओं का अध्ययन कर आवश्यक दिशा–निर्देश प्रदान कर सके। अशोक मेहता समिति ने पंचायती राज के आकार एवं स्थायित्व के निमित्त वित्तीय एवं प्रशासनिक सिफारिशें की, किन्तु प्रतिवेदन के क्रियान्वन के पूर्व ही जनता पार्टी सरकार का पतन हो गया।

जी0वी0के0 राज समिति (1985) ग्रामीण पिछड़ापन तथा निर्धनता को दूर करने एवं ग्रामीण स्थानीय शासन के पुर्नगठन के तरीके सुझाने हेतु केन्द्र सरकार ने 1985 में जी0वी0के0 राव की अध्यक्षता में एक समिति गठित की, जिसका मत था कि सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास की जिम्मेदारी केवल सरकारी मशीनरी (नौकरशाही) पर होनी चाहिए। समिति अनेकों सिफारिश की

एवं पहली बार अनुसूचित जाति/जनजाति के लिए अरक्षण की भी सिफारिश की गयी।

एल0एम0 सिंघवी समिति (1986) भारत में पंचायती राज की विकास यात्रा के रुप में 1986 में सिंघवी भी प्रमुख कढ़ी थी। समिति ने ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रेरणा से अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की वृद्धि और विकास पर दृष्टिपात करने के पश्चात सिंघवी समिति ने विस्तृत ग्राम सभा को जीवित किया।

तिहत्तरवां संविधान संशोधन अधिनियम (1993)

इस अधिनियम को 17 राज्य विधान सभाओं द्वारा अनुमोदित किये जाने पर राष्ट्रपति द्वारा 20 अप्रैल 1993 को इस विधेयक पर अपनी स्वीकृति प्रदान की गयी तथा 25 अप्रैल 1993 से सम्पूर्ण भारत में प्रभावशाली हो गया। संविधान के 73वें संशोधन द्वारा संविधान में नया अध्याय 9 जोड़ा गया। अध्याय 9 द्वारा संविधान में 16 अनुच्छेद और 1 अनुसूची (ग्यारहवीं अनुसूची) जोड़ी गयी। इस अधिनियम के पारित होने से पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ तथा इसके लागू होने के परिणामस्वरुप दिल्ली और अरुणाचल प्रदेश को छोड़कर लगभग सभी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों ने अपने कानून बना लिये। जिसके प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैः–

1. ग्राम सभा एक ऐसा निकाय होगी जिसमें ग्राम स्तर पर पंचायत क्षेत्र में मतदाताओं के रुप में पंजीकृत सभी व्यक्ति शामिल होगें। ग्राम सभा राज्य विधान मण्डल द्वारा निर्धारित शक्तियों का प्रयोग तथा कार्यो को सम्पन्न करेगी।
2. प्रत्येक राज्य में मध्यवर्ती जिला स्तर पर पंचायतों का गठन किया जायेगा।
3. राज्य विधान मण्डल द्वारा निर्मित विधि के प्रावधानों के अनुरुप पंचायतों का गठन किया जायेगा।

प्रत्येक पंचायत के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रक्रिया द्वारा होगा, जिसमें सम्पूर्ण पंचायत क्षेत्र को उतने ही निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त किया जायेगा, जितने सदस्य उस क्षेत्र से निर्वाचित किये जायेगें, पंचायत के सदस्यों की संख्या का निर्धारण जनसंख्या के अनुपात में किया जायेगा। ग्राम पंचायत के प्रमुख का निर्वाचन राज्य विधान मण्डल द्वारा अनुमोदित विधि के प्रावधानों के अनुसार किया जायेगा। मध्यवर्ती या जिला स्तरीय पंचायतों के प्रमुखों का निर्वाचन ग्राम पंचायतों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा किया जायेगा।

प्रत्येक ग्राम पंचायत में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के लिए सीटें आरक्षित होगी। ये सीटें पंचायत में उनकी जनसंख्या के अनुपात में निर्धारित की जायेगी तथा चक्रानुक्रम से विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में आरक्षित की जायेगी। अनु0जाति/अनु0जनजाति के लिए आरक्षित स्थानों में कम से कम एक तिहाई स्थान अनु0जाति/अनुजनजाति से सम्बन्धित महिलाओं के लिए आरक्षित होगी। प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले कुछ स्थानों में से न्यूनतम एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किये जायेगें। यह सीटें चक्रानुक्रम से एक पंचायत के विभिन्न क्षेत्रों में आरक्षित की जायेगी। पंचायत की कार्य अवधि पाँच वर्ष होगी, यदि पंचायत को पाँच वर्ष पूर्व ही भंग कर दिया जाता है, तो छः माह की अवधि समाप्त होने से पूर्व चुनाव कराये जायेगें। राज्य विधान मण्डल विधि द्वारा पंचायतों को ऐसी शक्तियाँ प्रदान करेगी, जो कि उन्हे स्वशासन की संस्था के रुप में सक्षम बना सके तथा जिसमें पंचायतें अधिक विकास व सामाजिक न्याय के लिए योजनाएँ तैयार कर सके एवं ग्यारहवीं अनुसूची में समाहित विषयों सहित आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजनाओं को क्रियान्वित कर सके।

धर्म शब्द ''धृ'' धातु से बना है और इसका अर्थ है–वह जो किसी वस्तु को धारण करे या उस वस्तु का अस्तित्व बनाए रखे। धर्म प्रजा को धारण करता है। अर्थात धर्म का सिद्धांत सभी प्राणियों की रक्षा का सिद्धांत है। अतः कहा जा सकता है कि व्यक्ति के स्वंय तथा उसके

सामाजिक जीवन को सुव्यवस्थित तथा समुन्नत करने के लिये कल्याणकारी या हितकारी नियमों या नैतिक कार्तव्यों को ही धर्म कहते है।

एडवर्ड टेलर के अनुसार – ''धर्म का अभिप्राय अध्यात्मिक शक्ति में विश्वास करना है''

मैलनोवस्की – ''धर्म क्रिया का एक ढंग है, साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था है और समाजशास्त्रीय घटना के साथ–साथ व्यक्तिगत अनुभव भी है।''

दुर्खीम – ''धर्म पवित्र वस्तुओं से सम्बन्धित है अनेक विश्वासों और व्यवहारों की एक ऐसी संगठित व्यवस्था है, जो उन व्यक्तियों को एक नैतिक समुदाय की भावना में बाँधती है, जो उसी प्रकार के विश्वासों और व्यवहारों को अभिव्यक्त करते है।''

अतः धर्मा अलौकिक अथवा समाज से परे उच्च शक्ति में विश्वास है और इसकी अभिव्यक्ति पूजा–पाठ, आराधना, प्रार्थना, इबादत, भक्ति के द्वारा होती है।

अनुसंधान प्ररचना एवं विधि तंत्र

{(प्रस्तुत अध्ययन बाराबंकी जनपद में त्रिवेदीगंज विकास खण्ड की अठ्ठावन ग्राम पंचायतों पर आधारित है)–2006–2008 के बीच}

वर्णनात्मक शोध अभिकल्प या प्ररचना वह है जिसका उद्‌देश्य समस्या के सम्बन्ध में पूर्ण यथार्थ एवं विस्तृत तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना है। इसके द्वारा वास्तविक तथ्यों का संकलन किया जाता है और इन तथ्यों के आधार पर समस्या का वर्णनात्मक विवरण अथवा चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। इस प्ररचना की मूल आवश्यकता यथार्थता अथवा पूर्ण सूचनायें है। प्ररचना के माध्यम से प्रस्तुत शोध पत्र ग्राम पंचायतो में ग्राम प्रधानों की धार्मिक पृष्ठभूमि।

प्रस्तुत शोध में प्राथमिक तथा द्वितीय दोनों प्रकार के तथ्य संकलन के श्रोतों के उपयोग में लाया गया है। प्राथमिक श्रोत अर्न्तगत जनपद बाराबंकी के विकास खण्ड त्रिवेदीगंज के समस्त 58 ग्राम पंचायतों के ग्राम प्रधानों का साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से साक्षात्कार करके तथ्यों का संकलन किया गया है। द्वित्तीयक श्रोत के अर्न्तगत विभिन्न पुस्तकें, पत्रिकाएँ, लेख समाचार पत्र, आदि से सहायता ली गयी है।

परिकल्पनायें

एक परिकल्पना दो अथवा दो से अधिक चरों के मध्य सम्बन्ध का अनुमानित विवरण है। परिकल्पना कभी भी निराधार नहीं होती है। एक परिकल्पना के अर्न्तगत दो विशेषतायें चरों के मध्य सम्बन्धों का प्रतिपादन तथा कठिन सम्बन्धों के परीक्षण हेतु स्पष्ट पायी जाती है। विशेषीकृत रुप से प्रस्तुत अध्ययन में इस परिकल्पना की जाँच करने का प्रयास किया गया है

उपकल्पनायें

1. ग्राम प्रधान चुनाव जीतने के बाद धर्म विशेष के लोगो के साथ भेद–भाव से ग्रस्त है।
2. ग्राम प्रधान अपने ही धर्म के लोगो को नियमों में छूट देकर लाभ पहुँचाने की कोशिश करते है।
3. ग्राम प्रधान अन्य धर्म के लोगो के साथ सौतेला व्यवहार करते है।

अध्ययन का उद्‌देश्य

1. अध्ययन यह परीक्षण करेगा कि ग्राम प्रधान चुनाव जीतने के बाद किसी धर्म विशेष के लोगो के साथ भेद–भाव जैसी स्थिति से ग्रस्त तो नहीं है।
2. उक्त अध्ययन में यह जानने की कोशिश की जायेगी कि ग्राम प्रधान अपने ही धर्म के लोगो को नियमों में छूट देकर लाभ पहुँचाने की कोशिश करते है।
3. शोध पत्र में यह पता लगाने की कोशिश की गयी है कि ग्राम प्रधान भिन्न धर्म के लोगो के साथ सौतेला व्यवहार करते है।

किसी भी अध्ययन के विषय क्षेत्र के तीन आयाम क्षेत्र, संख्या एवं विषय सामग्री होते है, क्षेत्र की

दृष्टि से प्रस्तावित अध्ययन के अर्न्तगत बाराबंकी जनपद के त्रिवेदीगंज विकास में चयनित ग्राम प्रधानों में सम्पन्न किया गया है। अध्ययन की प्रकृति विवरणात्मक होने के साथ–साथ विश्लेषणात्मक भी है। अध्ययन में सम्मिलित सूचनादाताओं की संख्या की दृष्टि से इस अध्ययन में विभिन्न वर्गो के 57 ग्राम प्रधान व 01 ग्राम प्रधान मुस्लिम धर्म को सम्मिलित किया गया है। आंकड़ों को एकत्रित करने की प्रविधियों के आधार पर ढंगो को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दो उपसमूहों में विभाजित किया जा सकता है। अध्ययन को साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से सम्पन्न किया गया। सूचनादाताओं से तथ्यों के संकलन हेतु सम्बन्धित उद्देश्यों व उपकल्पनाओं के आधार पर अनुसूची का निर्माण किया गया है। सम्बन्धित साहित्य का अवलोकन करके सूचनादाताओं की सामाजिक पारिवारिक स्थिति तथा उनके सामने आने वाली समस्याओं के विषय में जानकारी प्राप्त की गयी है तथा सूचनाओं एवं साहित्य के आधार पर पहले उपकल्पना तैयारी की गयी। अनुसूची बनाते समय यह ध्यान रखा गया है कि अनुसूची की विषयवस्तु उपकल्पना एवं उद्देश्यों से परे न जाये। यह भी ध्यान रखा गया है कि प्रश्न द्विअर्थी न हो, न ही किसी की मनः स्थिति को ठेस पहुँचाने वाले हो। प्रश्नों का निर्माण इस प्रकार किया गया जो शोधकर्ता एवं सूचनादाता दोनों को आसानी से समझ में आ सके।

तथ्य संकलन के प्रारम्भ में प्रत्येक सूचना दाता से व्यक्तिगत सम्पर्क कर शोधकर्ता ने अपना परिचय देते हुए शोध कार्य का उद्देश्य बताया तथा साक्षात्कार का समय सूचनादाताओं की सुविधानुसार लिया। तथ्य संकलन के अर्न्तगत साक्षात्कार के विभिन्न ढंगों का प्रयोग किया गया। इस दौरान प्रत्येक सूचनादाता का अवलोकन करते हुए साक्षात्कार पूर्ण किया गया। अनुसूची में चयनित ग्राम प्रधानों के एवं उनके परिवार व समाज की दृष्टिकोण के विभिन्न आयामों में विशेषकर धर्म के सम्बन्धों में देखने का प्रयास किया गया। इस प्रकार साक्षात्कार की प्रक्रिया पूर्ण की गयी।

निष्कर्ष :–

1. अध्ययन में पाया गया कि ग्राम प्रधान चुनाव जीतनें के पश्चात धर्म विशेष के लोगो के साथ भेद–भाव से ग्रसित नहीं है।
2. निष्कर्षतः यह भी प्राप्त हुआ कि ग्राम प्रधान अपने धर्म के लोगो को लाभ पहुँचाने की दृष्टि से नियमों में छूट दे देते है।
3. अध्ययन में यह भी पता चलता है कि ग्राम प्रधान किसी दूसरे धर्म के लोगो के साथ सौतेला व्यवहार करते है।
4. शोध में अध्ययन की उपकल्पना सत्यापित हुई।

सन्दर्भ सूचीः–

1. गुप्त एवं शर्मा, ग्रामीण समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।
2. देसाई, ए0आर0 भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, रावत पब्लिकेशन, जयपुर एवं नई दिल्ली, 1999।
3. मदान जी0आर0 ग्रामीण समाजशास्त्र, एस0 चांद एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0, राम नगर, नई दिल्ली।
4. Dube, S.C. Indias Changing Village : Human Factor’s in Community Development, London, Routledge and Kegan Paul, 1958.